

मूल्य छ रुपये(6 00)

द्वितीय संस्करण 1970, © नानकसिंह

शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, शाहदरा, दिल्ली, में मुद्रित

PUJARI (Novel) by Nanak Singh

जादूगरनी



रचयिता
श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

सोल एजेन्ट्स
सस्ता-साहित्य-भण्डाल,
अजमेर ।

प्रकाशक
भारती-प्रकाशन-मन्दिर,
अजमेर ।

प्रथमवार

२१००

मूल्य
बारह आना

जुलाई
१९३१

मुद्रक
जीतमल लक्ष्मिया,
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर ।

प्रकाशक का वक्तव्य

बहुत दिनों से इच्छा थी कि हिन्दी में एक ऐसी प्रकाशन-संस्था का सूत्रपात किया जाय, जो सद्ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ-साथ श्रमजीवी लेखकों के हित का अधिक-से-अधिक खयाल रखे एवं उनकी अधिक-से-अधिक सेवा करके उन्हें जीवन-संघर्ष में कुछ सहायता पहुँचा सके और जिसका संचालन भी पूँजीपति प्रकाशकों के हाथ में न होकर श्रमजीवी लेखकों ही के हाथ में हो। तात्पर्य यह कि पाठकों की सेवा और लेखकों की सहायता ही जिसका ध्येय हो और जो पाठकों और लेखकों के बीच में, उनके दुख-दर्द से अनभिज्ञ कोरे अर्थलोलुप पूँजीपति प्रकाशकों की दीवार न खड़ी होने दे।

तदनुसार 'कलाधर-किरण-मण्डल' नामक संस्था का ग्वालियर में प्रारम्भ किया गया और उसका ध्येय उस समय, साधनों की संकुचितता के कारण, केवल ललित साहित्य का प्रकाशन ही रखा गया। 'आँखों में'—नामक एक पुस्तक भी उससे प्रकाशित की गई। किन्तु, बाद में, परिस्थिति के कुछ अनुकूल और साधनों के कुछ सुलभ हो जाने पर उसका कार्य-क्षेत्र बढ़ा देने की इच्छा हुई। कुछ मित्रों को नाम में भी संकीर्णता का आभास मिला। अतः, अब उसे 'भारती-प्रकाशन-मन्दिर, अजमेर' के विकसित रूप में नये सिरे से प्रारम्भ किया जा रहा है और उसका लक्ष्य केवल ललित साहित्य निकालना ही नहीं, वरन् सब प्रकार की सुरुचि-पूर्ण, उपयोगी और उत्कृष्ट पुस्तकों प्रकाशित करना निश्चित

किया गया है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध निस्स्वार्थ संस्था 'सस्ता साहित्य-मण्डल' ने अपने स्वाभाविक स्नेह और औदार्य के साथ हमारी पुस्तकों की सोल एजेन्सी लेकर हमारे कार्य को बहुत सुगम बना दिया है।

हमें आशा है, अब हमें इसके द्वारा विविध रुचि के सहृदय पाठकों के साथ-साथ विभिन्न विषयों के विद्वान् एवं प्रतिभाशाली लेखकों की सेवा करने का यथेष्ट अवसर मिलेगा और हम सुरुचि, तत्परता तथा ईमानदारी के साथ उसके लिए सदा यत्नशील रहेगे।

'ऑखो में' के बाद प्रेमीजी की यह दूसरी और सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ पुस्तक प्रकाशित करने का हमें अवसर मिल रहा है। हिन्दी में यह अपने ढंग की विलकुल नई चीज है। आशा है, पाठक इसे अपनाकर हमें प्रोत्साहित करेंगे, जिससे हम अन्य लेखकों की भी विविध विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकें शीघ्र ही उनकी सेवा में उपस्थित कर सकें।

इसके बाद ही हम श्रद्धेय हरिभाऊजी उपाध्याय का 'साहित्य और समाज'—नामक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। हमें विश्वास है, वह हमारे पाठकों को और भी प्रिय होगा।

सहृदय पाठकों को यह तो बताना ही न होगा कि 'भारती-प्रकाशन-मन्दिर' उनकी सेवा का लक्ष्य सामने रखकर ही साहित्यक्षेत्र में आ रहा है और वह केवल उन श्रमजीवी लेखकों की संस्था है, जो एक निश्चित सदुद्देश्य लेकर जीवन-पथ में बढ़ना चाहते हैं।

प्राक्कथन

कबीर ने कहा है,—

‘माया महा-ठगिनी हम जानी ।

तिरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी वाणी ।

केसव के कमला है वैठी सिव के भवन भवानी ।

पडा के मूरत है वैठी तीरथ में भई पानी ।

योगी के योगिन है वैठी राजा के घर रानी ।

काहू के हीरा है वैठी काहू के कौड़ी कानी ।

भक्तन के भक्तिन है वैठी ब्रह्मा के ब्रह्मणी ।

कहै कबीर सुनो हो मन्तो यह सब अकथ कहानी ।’

इसी ठगिनी ‘माया’ को मैंने ‘जादूगरनी’ कहा है ।

इसी जादूगरनी के विविध रूपों को शब्दों-द्वारा अंकित किया है । जिसने अपने ‘जादू’ से सकल ब्रह्माण्ड को मोह लिया है, उसकी शक्ति का—उसके सौन्दर्य का वर्णन करना वास्तव में बुद्धि के परे है । मैंने लिखा है—‘एक मनोरञ्जन था विधिका, जिसने दिया तुम्हें आकार । अपने जाले में मकड़ी-सा, पर, फँस गया स्वयं कर्तार ।’ इस महामाया के महाजाल का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकते । कबीर के शब्दों में वह ‘अकथ कहानी’ है ।

यही महामाया प्रत्येक भवन में नारी बनकर अपनी अभिराम छवि से आलोक करती रहती है। संसृति के प्रथम प्रहर से जगत् इसी रूप की वन्दना कर रहा है। अनेक गीतो-द्वन्दों, काव्यों-उपन्यासो, नाटकों में, इसी छवि का अभिवादन किया गया है ! 'घर-घर में तेरी ही प्रतिछवि करती है आलोक अनूप। अगणित अणुओं में बँट जाता एक महत्तम नारी रूप !'

मैंने इस पुस्तक में शक्ति के लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के रूपों का वर्णन करने का प्रयत्न किया है ! इस सर्व-व्यापक शक्ति के सौन्दर्य का सम्पूर्ण अनुभव करना, और उस अनुभूति को व्यक्त करना बहुत सरल नहीं है, इसलिए मुझे अपने प्रयास में पूर्ण सफलता मिली है, यह मैं नहीं कहता, परन्तु, मुझे आशा है, इस विषय के जितने काव्य अभी तक देखने में आये हैं, उनमें यह पुस्तक एक नई चीज अवश्य समझी जायगी। 'माया' का इस व्यापक रूप में विस्तृत वर्णन हिन्दी के किसी कवि ने किया है, यह मुझे ज्ञात नहीं। ब्रजभाषा के कुछ कवियों ने अवश्य ही नारी-रूप के वर्णन में अपनी कलम और दिमाग का सारा जोर लगा दिया है, लेकिन उन्होंने रस में इतना विष घोल दिया है कि उस विषय का साहित्य ही विकृत हो

गया है । जिन इने-गिने प्राचीन कवियों ने इस विषय में सुरुचि की रक्षा की है, उन्होंने एक ही प्रवाह में इतने विस्तार से नहीं लिखा । इसलिए मुझे यह कहने में संकोच नहीं होता कि इस विषय की इतनी विशद यह पहली ही पुस्तक है और इसमें मैंने सुरुचि की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया है ।

मेरा विचार था कि भूमिका में मैं भी अपनी धारणाओं के अनुकूल वर्तमान कविता-धारा का विस्तृत विवेचन करूँ, परन्तु यह पुस्तक ऐसे समय में प्रकाशित हो रही है, जब मुझे कुछ लिखने का तो क्या, मरने का भी अवकाश नहीं है । और फिर, साहित्य-संसार में भूमिका-की अपेक्षा अपने काव्य के गुण-दोषों द्वारा ही प्रतिष्ठा प्राप्त करना मैं अधिक श्रेयस्कर समझता आया हूँ, चाहे आज-कल प्रतिष्ठा उन्हीं को क्यों न प्राप्त होती हो, जो स्वयं या अपने-मित्रों-द्वारा निरन्तर अपना विज्ञापन किया करते हैं । वैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करने की मुझ में शक्ति भी नहीं और इच्छा भी नहीं, यदि कोई इच्छा है तो केवल यह कि जब मैं सरस्वती के मन्दिर में आ ही बैठा हूँ तो लोग मेरे भी गीतों का मर्म समझें । मैं इनको अकिञ्चनता से अपरिचित नहीं हूँ, पर यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इन्हें

लिखते समय मैंने 'दर्दे दिल' का कम अनुभव नहीं किया है।

मुझे अपनी इस पुस्तक से बड़ा सन्तोष हुआ है, इसलिए मैं आशा करता हूँ कि साहित्य-मर्मज्ञों को भी यह प्रसन्न करेगी ! जो कला के मर्म को नहीं समझते, वे इसकी निन्दा करें या प्रशंसा, मेरे निकट उसका कुछ भी मूल्य नहीं, परन्तु कला के पारखियों की सम्मति का वास्तव में मैं आदर करता हूँ, फिर चाहे वह मेरे पक्ष में हो या विपक्ष में। मैं प्रसन्न अन्तःकरण से पारखियों की परख की प्रतीक्षा करूँगा।

यदि पाठको ने इस पुस्तक को पसन्द किया, तो यथा-समय अपनी अन्य ५-६ पुस्तकें भी क्रमशः प्रकाशित कराने का यत्न करूँगा, जो प्रायः तैयार हैं।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

स्वर्गता 'प्रेमलता' की स्मृति में ।

प्यारी प्रेमलता,

जिस समय तू अपने छोटे-से जीवन की अन्तिम साँस ले रही थी, उस समय मेरे एक पहलू में तू सिसक रही थी और एक पहलू में यह 'जादूगरनी' पढ़ी थी !

तेरी जिस मुसकान ने मेरे हृदय में माधुर्य और जादू भर दिया था, वह देखते-देखते अनन्त शून्य में विलीन हो गई ! तेरी आँखों के जिन भोले इशारों से मेरे जीवन की गति बदल गई थी, वे सहसा निस्पन्द हो गए ! हाय, तेरे उन अधरों को, तेरी उन आँखों को मैं अपने ही हाथों से चिता पर जला आया ! वह चिता आज भी मेरे हृदय में 'धक-धक' जल रही है !

तुझे पहली बार देखकर 'जादूगरनी' लिखने की इच्छा हुई थी ! वह पूरी भी न हो पाई, कि तू पहले ही चल दी ! दिल टूट गया ! कलम रुक गई ! तब से टूटे-टुपे दिल की तरह यह अधूरी ही पढ़ी रही !

तेरी स्मृति मेरे हृदय और आँखों में सदा नृत्य करती रहती है, मेरी 'जादूगरनी' भी संसार के हृदय और आँखों में नतन करे, यही आशीर्वाद दे !

तुझे मैंने अपनी समझा था, पर, तू उस अनन्त की एक किरण थी । उसीने तुझे अपने में समेट लिया !

यह 'जादूगरनी' भी मेरी नहीं है, यह भी उसी अनन्त की है ! उस अनन्त तक अभी मेरी पहुँच नहीं हुई है, पर तेरी स्मृति पर

मेरा अनन्य अधिकार है और उसकी पहुँच अनन्त तक है। भतः उसे ही यह 'जादूगरनी' समर्पित है। तू अपने अद्भ्य हाथों से इसे अनन्त की मेंट करदे। वह अपने अनन्त हाथों से इसे संसार को सौप दे।

संसार तुझे मेरी 'पुत्री' समझता था और मैं ठीक नहीं कर पाया था कि क्या समझूँ। तू छोटी थी—दुधमुँही थी, पर तुझे गोद में खिलाने समय मैं अनन्त की गोद में खेलने लगता था! अब इस 'जादूगरनी' को हृदय से लगा लेता हूँ, तो समझता हूँ, यही मेरी प्रेमलता है। मेरी प्रेमलता ! मैं तुझे जितना प्यार करता था, उतना क्या कोई और कर सकता था, इसी तरह मेरी 'जादूगरनी' को क्या कोई मेरी तरह प्यार कर सकेगा !

—'प्रेमी'



जादूगरनी

री जादूगरनी छविमान !

किया विधाता ने तुम्हको रच
अपना ही स्वरूप-विस्तार ।
अपना चमत्कार, मायाविनि,
दिया तुम्हें उसने उपहार ।

अपनी इच्छा से तू जैसा,
देवि, बनाती है संसार—
अपनी ही कृति कहकर उससे
होता है कृतार्थ कर्तार ।

[३]

जादूगरनी

अपना ही प्रतिरूप बनाकर
भेजा है तुम्हको, सुकुमार !
अथवा तेरा रूप बनाकर
लिया यहाँ उसने अवतार ।

तू, चिर-सुन्दरि, विश्व-विपिन में
खिलती है, देती मधु-दान—
जो मधु-दान जगत् की ज्वाला को
करता है शान्ति प्रदान ।

सुन्दरता की सरिता, तेरे
सरस स्नेह में कर जग स्नान,
पाप, ताप, अभिशाप शान्त कर
हो जाता मङ्गल, अम्लान ।

जब तेरी छवि जग-पलको पर
करती है माटक शृङ्गार,
स्नेह-स्वप्न-सा सुन्दर, सुखकर
वन जाता है तव संसार ।

जादूगरनी

जो तुम्हको पूजा करते हैं
भे'ट चढ़ाते तुम्ह पर प्राण,
जिनको जादू-भरी हँसी से
करती है निहाल अनजान,

जग के पाप-विकारो से वे
हो जाते हैं, पावनि, पार ।
सत्य और सुन्दर है, शिव है,
है असीम तेरा अधिकार ।

तेरे जादू से जगमग हैं
भुवन चतुर्दश, तीनों लोक ।
करती है अपनी आभा से
लोक-लोक मे तू आलोक ।

रवि के चारो ओर घूमते
जैसे ग्रह-उपग्रह अविराम,
तुम्हे घेरकर घूम रहे है
जग के प्यासे नयन सकाम ।

जादूगरनी

जो करता है तेरी छवि में
अपना जीवन तन्मय लीन
वही अमर हो जाता सुन्दर,
हो जाता है सीमाहीन ।

नन्दन-वन के रस-मानस के
स्वर्ण-शतदलो पर अविरत
चञ्चल परी, अरी, तू कितने
कल्पो से है नृत्य-निरत !

कभी-कभी पंखो पर बैठा
जाती जग को उस पार,
जहाँ प्रेम, मादकता, मधुच्छतु,
सत्य, अमरता का विस्तार ।

तेरे मूक इशारे पर, सखि,
मन्त्र-मुग्ध होकर संसार
चरणों पर चुपचाप चढ़ाता
चरम साधनाओं का सार,
री जादूगरनी छविमान !

जब तू पागल करती प्राण,
जब तू अपना रूप दिखाती
नयनों का सारा अभिमान
तेरे चरणों पर मुक जाता,
विस्मित होते हैं नादान ।

तेरे आकर्षण की मादक
मृदुल अँगुलियाँ अति सुकुमार
बरवस मुट्ठी में कर लेतीं
जग के कितने हृदय उदार !
[७]

जादूगरनी

ठुकरावे, इतरावे, चाहे
हँसकर गले लगावे तू,
जग तुझ पर ही मतवाला है
मारे या कि जिलावे तू।

जग हृदयो का हार गूँथकर
देता है तुझको उपहार।
तू निहाल कर देती उसको
कर उससे अपना शृङ्गार।

इन्द्रधनुष—सी रग—बिरंगी
जादू की लकड़ी तेरी
केवल कौतूहल में तूने
जिसके भी ऊपर फेरी,

जीवन भर वह पागलपन के
सपने देखा करता है,
अन्तर्-तर की तस्वीरों में
रंग अनोखे भरता है।

जादूगरनी

अमर वेदना से वह अपना
सृना हृदय सजाता है ।
अपनी टूटी हुई बाँसुरी से
तेरे गुण गाता है ।

बेहोशी के—मादकता के
मधुवन में वह मधुप-समान
तेरी सुधि में बेसुध हो
गाता तेरी ही छवि का गान ।

वहता है निर्भर-सा अविरल
कितनी बाधाएँ कर पार,
तुझमें ही अस्तित्व डुबाता,
अरी प्यार की पारावार !

तेरी एक झलक में दुनिया
दीवानी हो जाती है ।
कितने रंग-विरंगे तेरी
माया जाल विछाती है,
जब तू पागल करती प्राण ।

जब तू करती है आह्वान
तेरी ओर हृदय विहगी-सा
तव सहसा उड़ जाता है—
रवि-शशि-अम्बर के भी ऊपर
अपना मार्ग बनाता है ।

सूने में तेरा आकर्षण
दूना हो जाता बलवान ।
तेरी सतरंगी सीमा को
छूने को अकुलाते प्राण ।
[१०]

जादूगरनी

जब तूफान उठाती है तू,
जब मानस लहराता है,
अतल-सिन्धुमें, विना नाव, उर
लहरो पर बह जाता है।

कण-कण 'चलो-चलो' कह उठता,
क्षण-क्षण लगता कल्प-समान,
त्रिभुवन की विराट वीणा मे
जब बजता तेरा 'आह्वान'।

दिनमणि की अगणित किरणों-सा
तेरा आकर्षण, छू प्राण,
अन्तर् में भङ्कृत कर देता
अभिलाषा की आकुल तान।

सारी जंजीरों पैरो में
लिपटी ही रह जाती हैं,
पागल बनकर तुझे खोजने की
घड़ियाँ जब आती हैं।

जादूगरनी

अनायास ही दशों दिशाओं के
खुल पड़ते हैं सब द्वार ।
'मलय' सुरभि-सा भर ले जाती
हृदय चित्तिके भी उस पार ।

उपदेशों के जाल बिछाकर
जग तकता रह जाता है,
पर यह मानस ऊपर उड़कर
तुझमें ही मिल जाता है ।

सात-सिन्धु के पार बैठकर
भी तू, सुमुखि, बुलाती है ।
कभी-कभी आकाश-कुसुम बन
प्राणों को तड़पाती है ।

किन्तु, निराशा के भी ऊपर
मानस सेतु बनाता है ।
वार-वार ऊपर उड़ता है,
वार-वार गिर जाता है ।

जादूगरनी

एक बार जो पलकें खुलती,
फिर वे कभी न गिरती हैं,
जिधर-जिधर तू जाती है, वे
उधर-उधर ही फिरती है ।

एक इशारे में जीवन के
सब बन्धन खुल जाते हैं ।
केवल तेरे ही बन्धन में
प्राण समुद्र बँध जाते है ।

अरी अमरता के उपवन की
सुन्दरतम कोमल जलजात !
अलि-सा विश्व बंद हो जाता
छवि-पंखुड़ियों में अज्ञात ।

इस बन्धन से मोक्ष बदलने की
जिस दिन आज्ञा होगी,
तेरे द्वार भिखारी होंगे
शत-शत युग-युग के योगी ।

जादूगरनी

संस्कृति के आदिम प्रभात से
अब तक कितने पागल प्राण
तेरे हंगित के बंदी बन
जीवन-मुक्त हुए अनजान ।

पल में खुल पड़तीं हग-कलियाँ,
कण-कण हो जाता गतिवान,
जब तेरे आह्वान-गान की
छिड़ती है अम्बर में तान ।

तेरे आकर्षण के शर से
विध जाते समाधि के प्राण,
तू ही तू फिरती पलकों में
'शमु' लगाते हैं जब ध्यान ।

तेरी ओर दौड़ पड़ने में
अनायास मिलता 'निर्वाण' ।
तेरे चरणों पर झुक जाते
जप, तप, साधन, व्रत, कल्याण,
जब तू करती है आह्वान

जब तू छिपकर गाती गान,
अहे सप्त स्वर की निर्मरिणी,
तेरी दूरागत मंकार
जग के पलकों पर लहराती
स्वप्नो का झिलमिल संसार ।

सुख-दुख की चण-भंगुर दुनिया
जिसमें लय हो जाती है,
केवल 'तन्मयता' जीवन का
चरम विभव बन जाती है ।

जादूगरनी

कितना विस्मय, कितना आग्रह,
कितनी जिज्ञासा अनजान
तेरे प्रति जग उठती उर में
तनिक टूटती है जब तान !

कुछ कहने-सुनने के पहले
फिर तू भरती है आलाप ।
जग के प्राणो पर हो जाता
फिर वह जादू अपनेआप ।

तेरी वीणा रची गई है
सकल कलाओं के ले तार,
जिससे कुशल अँगुलियाँ तेरी
जग में वहा रहीं रस-धार ।

ले जागृति का राग उपा से,
निशि से ले मोहनी महान,
मादकना शशि की, शिशु की
ले पावनता, जल का कल-गान,

जादूगरनी

निर्भर का स्वर, सरिता की लय,
सागर का लेकर तूफान,
अपने महागान में भरकर,
गा देती है जब, छविमान !

अतल रसाम्बुधि में भावुक जग
एक तान में होता लीन ।
छवि का कूल ताकते रहते
ज्ञान और विज्ञान प्रवीण ।

बैठ क्षितिज के पार, प्यार की,
सुसुखि, उठाती मधुर हिलोर,
बँध जाते अनुराग-ग्रन्थि में
जिससे नभ-भूतल के छोर ।

जग के प्रथम प्रहर से तेरी
तानें सुनते आते हैं
कितने गुणी विश्व में हैं
जो उनका अर्थ लगाते हैं
जब तू छिपकर गाती गान !

जब तू देती दर्शन-दान

एक-एक आकुल चकोर को
शत-शत शशि मिल जाते हैं ।
शतदल अपनी पंखुड़ियों में
अगणित भानु खिलाते हैं ।

जो जिसका चिरवाञ्छित है, वह
मिलवा उसको शत-शत चार
पलभर जग पर रीझखोलती है
जब तू अपना भण्डार ।

जादूगरनी

गोपन का आवरण गगन से
तत्क्षण मट हट जाता है ।
घूँघट घन-पट-सा घट जाता,
छवि का रवि मुसकाता है ।

रखित रूप-राशि पर यौवन
बलिहारी हो जाता है ।
सब जग सूर्यमुखी से लोचन
तेरी ओर घुमाता है ।

सुन्दरता के अमर लोक की
इन्द्रधनुष-वसने वाले !
तेरी पहली-ही भाँकी में
छक जाते लोचन-प्याले ।

जीवन, मरण, अच्युति, च्युति, औ'
सुख, दुख, वृष्णा, प्यास, पुकार
एक घड़ी को छिप जाते हैं
जब दर्शन देती सुकुमार ।

जादूगरनी

पल-पल पर होती रहती है
तू सुन्दर से सुन्दर-तर,
छवि की अकथ कथा लिख पाएँ
कब कवि के ओछे अक्षर !

ज्योत्स्ना की उज्ज्वलता लेकर,
शशि की ले मादक मुसकान,
चकाचौंध चपला की भरकर
आँखों में अनंग के बाण,

गगन-पुष्प-सा खिल जाता है
जब तेरा सौन्दर्य महान,
उसकी एक झलक जगती के
अलि से ले उड़ती है प्राण ।

एक निमिष को भी यदि, सुन्दरि,
राह भूल कर आती है,
अनृत, असुन्दर, अशिव जगत् को
अजर अमर कर जाती है
जब तू देती दर्शन-दान ।

जब तू छिटकाती मुसकान,
विश्व-रूप-सर के सुमनो के
अरुण लोक की, अयि रानी,
तेरे एक अधर-कम्पन में
बनती दुनिया दीवानी ।

स्वर्ण-परी, सौन्दर्य-लोक से
छिटकाती ऊषा-सा हास,
त्रिभुवन अनुरञ्जित हो उठता,
फूल-फूल उठता मधुमास ।

जादूगरनी

भंकृत हो उठते प्राणो में
मोद, मधुरिमा, प्रेम, प्रकाश,
मद, मधु, सुरभि, सुधा, शीतलता,
वृप्ति, शान्ति, उल्लास, विकास ।

जग के अश्रु, तारिकाओ-से,
सुरमाकर छिप जाते हैं ।
अगणित उर, पुष्पों-से, पल में
पुलकित हो मुसकाते हैं ।

नन्दन-वन का सौरभ भरकर,
संध्या का लेकर तप-त्याग,
अलसित निशि का मद, समेटकर
अम्बर का अपार अनुराग,

एक वार भी जग-आँगन में
मुसका देती यदि, छविमान,
दशो दिशाएँ खिल उठती हैं,
मुखरित हो उठते हैं प्राण ।

एक पुलक मे, वन-कुसुमो के
 'खुले' इशारे पा, अनजान
 विस्मय के जग में खिल पड़ते
 वन-विहगो के कोमल प्राण ।

तेरी ओर 'ऋचा' के ऋषि भी
 पलभर पलक उठाते हैं।
 दर्शन के गम्भीर राग में
 कोमल स्वर लग जाते हैं ।

तिरस्कार या प्यार हृदय का
 कुछ भी मूल्य चुकाती है,
 एक हँसी में प्राण जगत् के,
 ठगनी, ठग ले जाती है ।

पुण्य, प्रेम, वरदान, अमृत, सुख
 आशा, अभिलाषा, कल्याण,
 मुक्ति, योग, साधन-सा पावन
 दिखता तेरा रूप महान
 जब तू छिटकाती मुसकान !

जब तू करती है पहचान,
अमर लोक से उतर मर्त्य-जगमें
कोमल पग धरती है,
ममतामयि, अपनी असीमता,
'सीमा' में लय करती है ।

उर के सारे गीत उमड़कर
आँखों में आ जाते हैं,
आँखों ही आँखों में, पलभर,
परिचय बदल लजाते हैं ।

जादूगरनी

तुझे निकटतम कह, मानव-उर,
गूढ़ स्नेह का तुझ पर सार,
अपरिचिते, पहली चितवन में,
करता निस्संकोच निसार ।

एक-दूसरे से छिपकर सब
उर में लिखते तेरा नाम ।
तेरी छवि अभिराम जगत् के
जगमग कर देती हृद्दाम ।

तेरा परिचय कनक-किरण-सा
छू लेता जब उर के तार,
कितने मादक गीत प्रीति के
भङ्कृत हो उठते अविकार !

स्नेह,सान्त्वना,शान्ति,मुक्ति-सी
तू हर लेती है दुख-भार,
अयि उदार, जब अपनाती है
अपने कोमल पाणि पसार ।

जादूगरनी

प्रथम पदार्पण से लेकर तू
जीवनभर धर कितने रूप
कण-कण से परिचय करती है,
उर-उर से अनुराग अनूप !

तेरे अञ्चल की छाया में
व्यथित विश्व करता विश्राम,
जब तेरे वत्सल स्वभाव का
परिचय पाता है अभिराम ।

पतित-पाविनी, तेरा परिचय
पल में, माँ के स्नेह-समान,
बहा नयन-जल में सद कल्मष,
निर्मल कर देता है प्राण ।

घर-घर में तेरी ही प्रतिछवि
करती है आलोक अनूप,
अगणित अणुओं में धँट जाता
एक महत्तम नारी रूप
जब तू करती है पहचान

जब तू बनती है नादान,
सीमा में अबोध अन्तर् के
बँध जाता सौन्दर्य अपार ।
बन जाती तेरी निश्छल छवि
कितने हृदयो की शृङ्गार !

पहली ही भोली चितवन में,
योगी के उर-सी अविकार,
इस अनजान जगत् का, सरले,
सहज डुबा लेती सब प्यार ।

जादूगरनी

क्रमशः अर्थहीन आँखों में
'कौतूहल' मुसकाता है,
धीरे-धीरे 'विस्मय' उर की
लहरो में लहराता है ।

वारि-वीचि-सी, प्रेम-पुलक-सी,
नीरवता की सी मुसकान,
निशि के सरल चन्द्र-सी शीतल
ऊषा-सी सुन्दर, अम्लान,

भरने के अविरल स्वर-सी,
तू अपने में ही हो तल्लीन,
तारा-से दृग जगमग जग में
खोल, खेलती इच्छाहीन ।

अनचाहे, अनजान, अचानक
शीतल करती जग के प्राण ।
निरभिमान, सौन्दर्य-शिरोमणि,
वनती प्राणों का अभिमान ।
[२८]

जादूगरनी

मृग-शावक-सी जग-आँगन मे
चञ्चल दौड़ लगाती है ।
विहगी-सी मृदु फुदक-फुदककर
डाल-डाल पर गाती है ।

अँगुली पकड़ किसी की जब तू
चलती है जग-आँगन मे,
तेरा पथ-दर्शक बँध जाता है
तेरे ही बन्धन में ।

पग-पग पर विस्मित कौतुक के
दृश्य देखने रुकती है,
कंकड़-पत्थर से भी, भोली,
भोली भरने झुकती है ।

मधुच्छतु का संदेश गंधवह
जब चुपके से लाता है,
एक नया जग तेरे पथ पर
पागल पलक विछाता है ।

जादूगरनी

विश्व-विपिन की कोमल कलिके,
स्वर्ण-स्वप्न-सी जब तू फूट,
चिर-दिन को उर में भर रखती
अपना रस-भण्डार अदूट,

तेरा भोलापन बन जाता
जग के अलियों को आह्वान ।
तेरे द्वार भिखारी बनने
उड़ते अगणित आकुल प्राण ।

आँखें खुलने को करती हैं
जब मधुकर आते पास,
अपने ही उर के धन का कव
मिलता है तुम्हको आभास !

जब मधुपों की टोली मिलकर
तुम्हको गीत सुनाती है,
तब तू आँखें खोल देखने में
भी क्यों शर्माती है ?
जब तू बनती है, नाद

जब तू खिलती सुमन-समान,
जब उर का सौन्दर्य छिपाकर
रखना हो जाता है भार,
मानस की प्रत्येक लहर में
तब अभिव्यक्ति उठाती ज्वार ।

जब यौवन की मृदुल गुदगुदी
पुलकित कर देती है प्राण
नहीं समाता हास हृदय में,
पलकें खुल पड़तीं अनजान ।

[३१]

जादूगरनी

मलय-पवन-सा यश त्रिभुवन को
जा संदेश सुनाता है ।
छवि का सौरभ उड़ा-उड़ाकर
जग को मधुर बनाता है ।

रसिक मधुप आकर गाते हैं,
उर को व्यास जताते हैं ।
मूक इशारा कर देती है
छक-छककर पी जाते है ।

जब सुवर्ण-घड़ियाँ अक्षय मधु
के प्याले देती है ढाल,
चिर-दिन की अक्षय अभिलाषा
हो जाती तत्काल निहाल ।

नन्दन-वन की कली, अवनि-उपवन में
खिलती बिना विचार ।
जग मतवाला हो जाता है
जब लुटता तेरा भण्डार ।

जादूगरनी

भूत-भविष्यत् मुँद जाते हैं,
वर्तमान खुल जाता है।
तुम्हें प्रत्यक्ष सत्य पर जग का,
यौवन हृदय लुटाता है।

जीवन-भरण सभी मिट जाते,
'प्यास' अमर हो जाती है।
देती है—देती रहती है,
देने में सुख पाती है।

बाले, जिनको पिला रही है
युग-युग से मधु के प्याले,
प्यासे के प्यासे हैं पागल
पल-पल पर पीने वाले।

एक बूँद ही कर देती है
पल में मानस मतवाला,
फिर भी अधरों से न छूटता
जीवन भर मद का प्याला।

जब तू खिलती सुमन-समान!

जब तू पल भर होती म्लान,
जग-उपवन सूना-सा लगता,
निशि-दिन की घड़ियाँ काली,
ओस-विन्दु-से, अश्रु-कणों से
भर जाती डाली-डाली !

जब ख़ाली प्याली-सी डाली-
पर मुक जाती है, आली,
कितने हृदय टूट जाते हैं,
रो पड़ता है वनमाली ।

जादूगरनी

पीड़ा की बेहोशी में लय
हो जाते 'गुन-गुन'-गाने ।
चारों ओर व्यथा चिपटा कर
सो जाते अलि-अलसाने ।

वह सौरभ, मद, प्यार, तरंगों,
वह सुख-यौवन की लाली,
सब कुछ काला-सा हो जाता,
हो जाती दुनिया काली ।

दुर्दिन का लपटों से तेरी
पंखुड़ियाँ कुम्हलाती हैं ।
पीछे वे लपटें मन-ही-मन
पछताती—शर्माती हैं ।

जब जग की मादकता, शोभा,
छवि, मानो मुरझाती है,
शिथिल अधर संध्या-से रजके
चुम्बन-हेतु मुकाती है ।

जब तू पल भर होती म्लान !

जब तू वनती स्वर्ण-विहान,
अगणित हृदय प्रफुलित होते
वन के सुमनों-से अनजान,
जादूगरनी, परिवर्तन का
पढ़ती है जब मंत्र-महान ।

तू विधवा-वेदना-सरीखी
तम का अगम गहन विस्तार
पल में मिटा, कनक-किरणों से
करती है जग का शृङ्गार ।

जादूगरनी

गगन-अवनि अनुरञ्जित होते,
पुलकित होते पल में प्राण ।
विहगों-से जग के भोले उर
मा उठते तेरा छवि-गान ।

तम का सघन आवरण तेरी
उज्ज्वलता कर देती दूर ।
वनता है अनुराग रषा का
तेरे मस्तक का सिन्दूर ।

आँखों में भर कर भावुकता,
श्रद्धा, भक्ति, प्रेम के फूल
जगत् आरती करता तेरी
अयि पावनि, अयि मंगल-मूल !

तू अनन्त के पथ पर चलती,
लेती पल भर जहाँ विराम,
कितना उज्ज्वल, कितना मंगल
हो जाता वह जग अभिराम !

जादूगरनी

कामिनि, कोमल कनक-करो से
करती नव-चेतन-संचार ।
भर-भर प्रेमाञ्जलि चरणों पर
मुदित चढ़ाता है संसार ।

तेरा इंगित विश्व-राग का
ठाट बदल देता सारा ।
तेरी एक उमंग बहाती
मरु मे नवजीवन-धारा ।

एक हास में, एक पुलक में,
एक अमृतमय चितवन में,
एक नया जग रच देती है
मूर्च्छित वसुधा पर क्षण में ।

पलक-पँखुड़ियाँ खोल भारती
वीणा-वादन-रत साह्लाद
तुझे प्रभाती के स्वर में
देती है पहला आशीर्वाद ।
जब तू वनती स्वर्ण-विहान ।

जब बनती अवला अनजान,
कर-स्पर्श से छुई-मुई-सी
तू, सुन्दरि, सकुचाती है ।
मलय-पवन से पद्म-पत्र के
जल-कण-सी हिल जाती है ।

कोमल कुसुमो की पंखुड़ियाँ
भी तेरे छिद जाती हैं ।
ऊषा की कोमल किरणें भी
तेरा हृदय जलाती हैं ।

जादूगरनी

जब संसार प्यार के जग से
कर देता है तुम्हको पार,
यौवन की उदाम उमंगों
चनतीं तेरे उर का भार ।

तुहिन-कणों-से आँखों में तू
अश्रु सजाये रहती है ।
करुणा की वर्षा-सी होती
जब कुछ मुख से कहती है ।

इन्द्र-धनुष के रंगों से भी,
चाले, विस्मित होती है ।
स्वप्नों पर विश्वास जमाकर
तू मन-ही-मन रोती है ।

अपने-आप विविध संदेहों का
तू जाल विद्यार्ता है ।
शान्ति,सौख्य,आनन्द हृदय का
अपने आप गँवाती है ।

जादूगरनी

एक कदम चलने को भी जग का
मुँह तकती रहती है ।
जिघर बहा ले जाए दुनिया
उसी ओर तू बहती है ।

दीन भिखारिन-सी, ऐ रानी,
चरणों पर झुक जाती है ।
तुझमें ही धिर कर प्राणोंकी
ज्वाला तुझे जलाती है ।

गिरे न आशा के कच्चे
धागे से बँधा हुआ जीवन,
इस भय से, रोके रहती है
अपने ही घर की धड़कन ।

री सौन्दर्य, मधुरिमा, बनती
तू बन्धन, करुणा-धारा,
फिर भी तेरा रूप जगत् को
लगता है कितना प्यारा !

जब बनती अबला अज्ञान !

जब तू झुकती महिमावान
शुभ्र चाँदनी की छाया में
किसी शिखर से झरती है ।
उतर मुखर निर्भर-सी सत्वर
स्वर से त्रिभुवन भरती है ।

तुझे विनम्र बनाता है, सखि,
प्राणों के संचय का भार ।
निष्ठुर सुन्दरता सीखेगी
तुझसे पाना हृदय उदार ।

जब वर्षा के बादल-सी तू
नीचे को फुक आती है,
जगत् नाच उठता मयूर-सा,
भूमि मुग्ध हो जाती है ।

तेरे स्नेह-सलिल से सिचकर
हृदय हरे हो जाते हैं,
कल्मष धुलते, शतदल खिलते,
रस-मानस लहराते हैं ।

किरणो-सी तेरी अंगुलियों
डाली को छू जाती हैं,
कलियाँ अपने आप चुम्बनो को
मृदु अधर बढ़ाती हैं ।

अरी मधुकरी, जिसके कानों में
तू गीत सुनाती है—
हृदय खोल देता वह अपना,
तू उसमें छिप जाती है,
जब तू मुकती महिमावान् ।

जब परदा करती गुणवान,
चिर-रहस्य-सी, गूढ़ प्रश्न-सी,
चिर-जिज्ञासा-सी अनजान
कितने उत्कण्ठित हृदयों में
कर लेती युग-युग को स्थान ।

मीनी-मीनी मधुर घटरिया में
छिपकर मुसकाती है ।
जग-चकोर की आँखों को तू
आकुलता बन जाती है ।

जादूगरनी

जब कलिका-सा सारा सौरभ
उर में भर रख लेती है
मधुकर के प्यासे प्राणों को
तू पागल कर देती है ।

जब रहस्य वन जाती, सुन्दरि,
अपना प्यार छिपाती है,
उलझन में कितने प्राणों को ।
री पगली, उलभाती है ।

जब तू दीप-शिखा-सी उज्ज्वल
मूक बनी मुसकाती है,
प्राणों को आमंत्रण देकर
कितनी बार जलाती है ।

भीतर रूप-शिखा जलती है,
बाहर जलते रसिक-पतंग ।
वञ्चित और व्यर्थ हैं दोनों,
हा आवरण, हाय, रस-भंग ।

जादूगरनी

अपने आँचल को बादल-सा
अपने पर छा लेती है ।
दिखती, और नहीं भी दिखती,
आँखों को दुख देती है ।

री रहस्य, जब मूक पहेली
बनकर, तू छिप जाती है,
भाँति-भाँति के अर्थ लगाकर
दुनिया धोखा खाती है ।

कौन देखता पट के पीछे
दो प्यासे नीरव लोचन,
एक अनन्त अतृप्त कामना,
एक हृदय, उन्मद यौवन ?

गोपन को अभाव कह जग का
फूला फिरता है अज्ञान,
छिपी-छिपी हँसती तू उसपर,
पर, न व्यक्त होती छविमान
जब परदा करती गुणवान

जब प्यासे रख जाती प्राण,
पहले एक मलक दिखलाकर
पल में पास बुलाती है,
फिर दो दिन को, तू पल-पल पर
प्रिये, पिलाती जाती है ।

जब जीवन को छोड़, तुम्हें
दुनिया सर्वस्व बनाती है,
जीवन ले, दे अमर व्यथा,
तू अम्बर में छिप जाती है ।
[४७]

जादूगरनी

तेरी निष्ठुरता के फल बन,
छलना का लेकर आधार,
विरह, अकृषि, विकलता, आँसू
जग में उतरे पहली बार ।

लाख-लाख आँखों से तुम्हको
हृदय देखता बारम्बार ।
किन्तु, सदा अनजान, अपरिचित,
नूतन-सी दिखती सुकुमार ।

शत-शत बार, चञ्चले, तुम्हको
लाता है उर अपने पास,
'दूर-दूर'-सी किन्तु सदा ही
लगती है—करती उपहास ।

मिलन-विरह दोनों ही पल-पल
नूतन प्यास जगाते हैं ।
होकर भी बेहोश 'और' को
रट ये प्राण लगाते हैं ।

जादूगरनी

पीते-पीते थक जाते, फिर भी
प्यासे रह जाते हैं;
आँखों को, उर को, अधरो को
चतुर बहुत समझाते हैं ।

दीवाने हो जाने पर भी
'प्रेम-प्रेम' ही गाते हैं ।
मरने के पीछे भी तेरी
याद साथ ले जाते हैं ।

युग-युग तक पीते है तेरे
करों प्रेम के मद-प्याले,
पर अतृप्ति की आग हृदय को
सदा जलाती है, वाले !

केवल प्यास जगा कर उर में,
अरी उर्वशी, उड़ जाती ।
उच्छ्वासो से दुनिया उर का
तुम्हें सँदेशा पहुँचाती
जब प्यासे रख जाती प्राण !

सुमुखि, जाल जब देती तान,
अपने लहराते वालों में
कितने उर उलझाती है।
कितने हृदयों को कल्पों तक
बन्दी बना बिठाती है।

भोले-भाले विहगो-से उर
बन्धन में सुख पाते हैं।
तेरे दो दानों पर अपना
सब कुछ भेंट चढ़ाते हैं।
[५०]

जादूगरनी

स्नेकर आकर्षण, सुन्दरता,
अंग-भंगि, चितवन, मुसकान,
लाज, मान, गोपन के धागे
रचती तू छवि-जाल महान !

तेरे स्नेह-तन्तु वसुधा के
करण-करणपर छा जाते हैं,
माया, मोह, और ममता के
जग को अमर बनाते हैं ।

स्वर्ग, नरक सब छिप जाते हैं,
केवल तू ही दिखती है ।
मादक आँखों की लाली से
सबकी किस्मत लिखती है ।

आत्म-समर्पण कर देते हैं,
पिंजरे में बस जाते हैं ।
प्रेम-पाश में, वन की स्मृति की
स्वयं समाधि सजाते हैं ।

जादूगरनी

जन्म-जन्म तक तेरा बन्धन
नहीं तोड़ने पाते हैं,
कभी मुक्त हो भी जाते, तो,
फिर फँसने को आते हैं।

अम्बर, अबनी, दशों दिशाओंमें
तू जाल बिछाती है।
ऐसा कौन हृदय है जिसको
तू न फँसाने पाती है।

विश्व, विहग-सा, तेरे आँचल की
सोता है छाया में।
सचराचर सबको ढक लेती
अपनी विस्तृत माया में।

तेरा आँचल सबके ऊपर
जब अम्बर-सा छाता है।
तारों-सा उर माँक-माँककर
फिर भीतर छिप जाता है।
सुमुखि, जाल जब देती बन।

जब तू बनती माया, प्राण,
तन्द्रा-सी छा जाती जग पर
घनी घटा-सी धिरती है ।
सपनों में आँखों के भीतर
केवल तू ही फिरती है ।

जब तू मद का प्याला बनकर
आँखों को तरसाती है,
विश्व दौड़ता है पीछे, तू
छाया-सी छिप जाती है ।

जादूगरनी

जग सपनों की आँख-मिचौनी में
जीवन उलझाता है ।
एक तमाशा-सा अपनी ही
आँखों में बन जाता है ।

आँखों पर परदा पड़ता,
तू उस पर चित्र बनाती है ।
तरह-तरह के रंग-विरंगे
मादक रूप दिखाती है ।

अजर-अमर अनुराग हृदय में
भर देती तेरी छाया ।
जीवन में चादर-सी तनती है
जब तू बनकर माया ।

जब विराग कहता है उर से
'है नश्वर सारा संसार'
तब जग में तेरी छवि भरती
सुधा, स्वर्ग-सुख, रस-भंडार ।

जादूगरनी

एक मनोरञ्जन था विधि का
जिसने दिया तुझे विस्तार,
अपने जाले में, मकड़ी-सा,
पर, फँस गया स्वयं कर्तार ।

निराकार, निर्लेप, ब्रह्म को
करती तू आकृतिवाला ।
सूने नभ का हृदय सजाती
पहना इन्द्रधनुष-माला ।

आदि-पुरुष को बाँध प्रेम में,
आदि-प्रकृति, तेरे भ्रू-भंग
एक ताल पर नचा रहे हैं
कब से अस्थिर जग के संग ।

शिल्पी का सौंदर्य-बोध-सुख,
कवि का रस-अनुभव-आनन्द
पाता है तेरी सीमा में
'आकृति', बन्धन में 'यति'-'छंद'
जब तू माया बनती, प्राण !

[

जब कर मान तानती बाण,
पल भर को भी इन्द्रधनुष-सी
भ्रू-कमान चढ़ जाती है,
जग-उर पर अदृश्य आशंका
की छाया-सी छाती है ।

कौन जान सकता नयनों के
घन का छिपा हुआ भण्डार
वज्र गिरावेगा या शीतल
विमल वहावेगा जल-धार ।

जादूगरनी

प्रकटित करते बाण मान के
कहीं वेदना, प्यास, पुकार,
कहीं बहाते मद का निर्भर,
कहीं अमृत की निर्मल धार !

मानिनि, सजल लोचनो से तू
करती विद्युत्—शर—सन्धान,
विकल-वेदना से विध जाते
दशो दिशाओं के उर, प्राण !

विजली-सी मानस पर गिरती
पीड़ा वन बस जाती है,
युग-युग तक कसका करती है,
पल-पल पर तड़पाती है ।

हृदय खोल कर रख देता है,
बाणों को अपनाता है,
जग तेरी शर-शय्या पर सो
'इच्छा-मरण' मनाता है ।

जादूगरनी

भग्न हृदय के टुकड़ों का ही
मादक हार बनाता है ।
उन कसकों के करुण दिनों में!
भी तुमको पहनाता है ।

उरके घावों की लाली से
जगत् लाल हो जाता है ।
तेरे वाणों को अपनाकर
अपने प्राण लुटाता है ।

एक वार जो मर जाता है,
वही अमर हो जाता है,
तेरे जग में वही चतुर है
जो पागल कहलाता है ।

लगता स्मृति-सा, शशि-सा सुन्दर
हृदय घाव सब को प्यारा ।
उसे निरखते ही मृदु निशियों
जाग विताता जग सारा ।

जादूगरनी

एक निमिष को भी जव, जग से
रूठ, मौन हो जाती है,
कितने छन्दों, रागों से तव
दुनिया तुझे रिझाती है।

बंकिम भृकुटि, आवरण, गोपन,
मौन, अश्रु, तिरछी चितवन,
लाज, उपेक्षा के शर जग को
मूर्छित कर देते तत्क्षण ।

केवल कौतूहल में ही, सखि,
कभी छोड़ देती है वाण,
पंखहीन पक्षी-सा जग का
हृदय तड़प उठता अनजान ।

जरा-मृत्यु, यौवन-जीवन, औ'
प्रलय, सृष्टि, अवसान, विहान,
तेरी चितवन पर उठते है,
सुख-दुख के कितने तूफान !

जादूगरनी

वेद, शास्त्र, जप-तप, पूजा-विधि,
योग, ज्ञान, विज्ञान महान्,
तेरा मान सभी के सहसा
विचलित कर देता है प्राण !

अखिल जगत् का कल-रव तेरी
फिर-फिर करता है मनुहार !
अगणित काव्य-कुसुम चरणों पर
भेंट चढ़ाता है संसार ।

एक निशाने में विध जाते
रवि-शशि-तारे विहग-समान ।
तुझ से हार मान लेना ही
विश्व समझता विजय महान् ।

एक वाण में अखिल विश्व का
पौरुष, कीर्ति, राज्य, धन, मान
घायल होकर, हार मान कर,
सुमुखि, माँगता जीवन-दान
जब कर मान तानती वाण !

जब तू बनती है तूफ़ान,
विश्व-रूप-सागर ! सुन्दरि, जब
प्रवल हिलोरें लेती है,
कितनी जीवन-नौकाओं को
तू चंचल कर देती है ।

पूर्णचन्द्र-सा प्रेम, गगन में चमक,
उठाता उर में ज्वार,
तब अभिलाषाओं की लहरें
करती कितना हाहाकार ।

जादूगरनी

अथि छवि-सिन्धु ! तरंगों तेरी
करती हैं जग को आह्वान,
मानों देती हो युग-युग के
सञ्चित रत्नों का तू दान ।

छद्म-वेशिनी, नक्षत्रों की
छाया से करती शृङ्गार !
किन्तु, छिपाये रहती उरके
अनुपम रत्नों का भण्डार !

तेरे उर का कूल खोजने
जग का कितना कौशल, ज्ञान
असफल यात्राएँ कर हारा
रही सदा तू अगम, अज्ञान ।

यह अभेद्य गहराई उर की !
प्रचल तरंगों, यह विस्तार !
चिर-जिज्ञासा के लोचन भी
पा न सके हैं तेरा पार ।

जादूगरनी

कितने पोत भंग कर देती
तेरी केवल एक तरंग ।
आशाओं के भवन टूट कर
वह आते बालू-से संग ।

अन्धकार-से, लहरो-से जब
वालों को लहराती है
राह भूल, अन्धी हो दुनिया,
उलमन में फँस जाती है ।

फैल रहा है पार चितिज के
भी तेरा अनन्त विस्तार,
दुनिया एक द्वीप-सी दिखती
सुन्न में, अथि छवि-पारावार ।

अपनी इच्छा से तू पल में
शत-शत विश्व बनाती है,
अपनी ही लहरों में उनको,
पल में बहा, मिटाती है ।

जादूगरनी

तुझे हृदय में विश्व बाँधकर
रखने की करता है चाह,
पर, तेरी अनन्त लहरों की
कौन रोक सकता है राह।

नहीं जानती है तू बन्धन,
चिर-चंचल, चपला, गतिमान !
नारा-सृष्टि के विविध स्वरों में
नित्य नये गाती है गान।

तेरी तरल तरंगें बढ़कर
वालू के कण से संसार
बहा, गोद में बिठा, चुम्बनो से
करती हैं उनको प्यार !

आशाओं के मेरु एक पल में
तू तोड़ गिराती है।
अपने एक हृदय-कम्पन से
जग में प्रलय मचाती है।
जब तू वनती है तूफ़ान !

जब ताण्डव करती अम्लान,
तेरी ताल-ताल पर तारे
टूट-टूट कर गिरते हैं ।
तेरी आँखों के इंगित पर
रवि-शशि के रथ फिरते हैं ।

समय चपल गति, दिनकर ज्वाला,
तड़ित् चमक, घन गर्जन घोर,
भू-भूकप, चढ़ाता तेरे
पद-पद्मों पर सिधु हिलोर ।

जादूगरनी

महा-प्रलय का डमरू, सुन्दरि,
हो उन्मत्त बजाती है,
विधि का मस्तक मुक जाता है
तू उसको ठुकराती है ।

मृत्यु चमकती है चितवन में,
नूपुर-ध्वनि में बजता नाश,
कँप उठता है विश्व देखकर
तेरा बंकिम भृकुटि-विलास ।

लोचन-प्यालों में विष भरकर
जिसे कराती है तू पान,
उसकी आँखों के आगे से
नभ-भू होते अन्तर्धान !

तेरे चरण-नूपुरों में, सखि,
मृत्यु-सुन्दरी गाती है,
'सवनाश' का राग छेड़ तू
तन्मय हो, मुसकाती है ।

जादूगरनी

तेरी वह मुसकान शान्ति के
उर में आग लगाती है ।
दशो दिशाएँ तेरी तिरछी
चितवन से विध जाती हैं ।

अंग-भंगि को निरख, विकल हो,
भूधर भी हिल जाते हैं ।
तेरे चरणो पर अमरों के
स्वामी प्राण चढ़ाते हैं ।

अन्धकार-सा अपना अश्वल
अवनी पर फैलाती है ।
काले केशो को नागिन-से
नभ में मुक्त उड़ाती है ।

जिसे! हवा भी छू जाती है
हो जाता बेहोश अजान ।
तेरा विष भी बड़े प्यार से
करता है स्वीकार जहान ।

जब विनाश का नेत्र तीसरा—
 खुलता, जल जाता संसार ।
 प्रलय, सृष्टि, दोनों पर तेरा,
 मायामयि, समान अधिकार

कितनी सुन्दर लगती है, सखि,
 जब तू आग लगाती है ।
 सारे जग की राख निरख कर
 धीरे से हँस जाती है ।

जब विनाश का नशा उतरता,
 तू मन में पछताती है,
 एक-बूँद आँसू से दुनिया को
 तू पुनः जिलाती है ।

किसी रूप में आवे, सजनी,
 दुनिया अर्घ्य चढ़ाती है ।
 तेरी छवि सबके प्राणों पर
 जय पाकर मुसकाती है ।
 जब ताण्डव करती अम्लान !

ज्व प्रकाश करती द्युतिमान !

भुवन चतुर्दश जलजातो-से
पुलकित हो मुसकाते हैं ।
अखिल विश्व के विहग सजग हो
तेरा गौरव गाते हैं ।

अन्धकार उज्ज्वल हो जाता
नभ में तनवा स्वर्ण-वितान ।
हो जाती हैं निशियाँ पावन,
सन्ध्या शीतल, विमल विहान ।

जादूगरनी

जब मन-मानस में करती है,
पावनि, पावन प्रेम-प्रकाश,
हृदय-कुञ्ज खिल उठता सहसा,
गुञ्जित होता है उल्लास ।

निशि में शशि, दिन में दिनकर बन
करती है आलोक अनूप ।
त्रिभुवन को अनुरञ्जित करता
ज्योतिर्मयि, तेरा शुभ रूप ।

जीवन की अँधियारी निशि में
कभी चमकती चन्द्र-समान ।
लख तेरी मुसकान हृदय में
उठने लगता है तूफान ।

जब तू शरद्चन्द्र-सी नीले
नभ में चढ़ मुसकाती है,
जरा-जीर्ण जग के प्राणों में
यौवन-ज्वार उठाती है ।

जादूगरनी

शातल उज्ज्वल कर-स्पर्श से
जिसे ज़रा छू जाती है,
पाप, ताप कर शान्त, उसीको
पल में अमर बनाती है ।

जग-चकोर के तव वियोग में
अंगारे चुगते है प्राण ।
विस्मय-सी हो उदित उसे तू
देती है नव-जीवन-दान ।

जब बेहोश हृदय पर, सुन्दरि,
सुधा-धार बरसाती है,
युग-युग के प्यासे प्राणों को
शीतल करने आती है ।

मरे हुए भी जी उठते हैं,
होता नव-चेतन-संचार,
अरी प्राणदे, तुम्हे निरखकर
होता है निहाल संस्कार ।

जादूगरनी

स्वप्नों को उज्ज्वल करती है,
दुख को मधुर बनाती है।
तेरी छवि की ज्योति निराशा में
आशा बन जाती है।

तारो-तारो में जग-मग है
तेरा ही उज्ज्वल आलोक।
तेरे ही प्रकाश में अपना
लक्ष्य खोजते तीनों लोक।

कभी अँधेरी कुटिया में तू
दीपक-सी जलती, सुकुमार,
कितने ही पतंग तेरी उस
छवि पर होते हैं बलिहार।

भव-सागर में जीवन-तरणी
राह नहीं जब पाती है,
बन प्रकाश का स्तम्भ, उसे तब
तू ही राह दिखाती है,
जब प्रकाश करती दृष्टिमान।

जब तू देती है वरदान,
तेरी मूर्ति हृदय-मन्दिर में
स्थापित करता है संसार ।
अश्रु-कणों का अर्घ्य चढ़ाता
तेरे चरणों पर अविकार

पीड़ा का दीपक जलता है,
उर में होता परम प्रकाश
तेरी छवि के मद-सौरभ से
भर जाते अवनी-आकाश

जादूगरनी

देवि, युगों के तप के पीछे
तेरे दर्शन पाते हैं।
तेरे चरणों पर जीवन के
सब अरमान चढ़ाते हैं।

जब तू कहती 'माँग', हृदय की
वाणी हो जाती है मौन।
तेरा वह आलोक निरख कर
सुधि में रह सकता है कौन ?

सूने से मुखरित होकर सब
गाते तेरी छवि का गान,
तेरे सम्मुख भक्ति-भाव से
मूक खड़े रहते अनजान।

तेरे रस से भरने खाली—
प्याली दुनिया लाती है,
पर तेरे आगे करने में
अभिलाषा स्रकुचाती है।

जादूगरनी

अन्तर्यामिनि, नीरव नयनों की
तू पढ़ लेती है बात !
जाने कब भर जाती प्याली,
नहीं किसी को होता ज्ञात ।

झोली टॉग द्वार पर तेरे
युगो हृदय देता फेरी,
जाने क्यो पीछे रह जाता
जब निधियाँ लुटती तेरी ।

जो उर की अभिलाषाओं को
कहते-कहते रुक जाता,
उसकी झोली में जाने कब
चिर-त्राव्छित घन भर जाता ।

तेरी एक मलक पाकर ही
भिचुक उर फिर आता है ।
तू कहती है 'मांग', किन्तु
वह कहाँ माँगने पाता है ।

जादूगरनी

तेरी छवि की एक किरण से
जल उठती जीवन-बवाला
तेरी स्मृति से अन्तस्तल में
हो जाता है उजियाला ।

आँसू मुक्ता-कण बन जाते
जलन हृदय-धन बनती है ।
स्वर्ण-वितान मनोहर बनकर
व्यथा चतुर्दिक् तनती है ।

वीणा-वीणा में भर जाते
अनजाने ही छवि-गाने !
गूँगे भी गायक बन जाते
और चतुर-जन दीवाने

इन्द्र-धनुष के विविध रँगों से
दिशा-दिशा रँग जाती है,
वसुधा हरी-भरी होती
जब अमृत-घार बरसाती है ।

जादूगरनी

जादूगरनी, जादू का कण
जिसकी माली मे भरती,
बेहोशी उसकी सुधि बनती
जीवन को मादक करती ।

सुख-दुख की परिभाषाओ का
कैसा अर्थ लगाती है ?
जिसको दुख कहती है दुनिया,
तू आनन्द बनाती है ।

बन जाती रंगीन कल्पना,
स्वप्न मधुर करती, वाले !
युग-युग के प्यासे लोचन भी
पल में होते मतवाले ।

तेरा ही वरदान व्यथा को,
सुन्दरि, सुन्दर करता है ।
मृत्यु अमरता बन जाती है,
पीड़ा में रस भरता है ।

जादूगरनी

तेरा ही वरदान प्राप्त कर
कला अमर हो जाती है।
तेरी आँखों के इङ्गित पर
मुग्ध भारती गाती है।

चित्रकार की रेखाओं में
तू ही चित्र बनाती है।
कवियों के करुणा-निर्भर में
तू ही अश्रु बहाती है।

कुसुमों के सौरभ में मिलकर
त्रिभुवन में बस जाती है,
तेरी छवि मधुपों के स्वर में
मधुर प्रभाती गाती है।

विश्व-रूप-उपवन की मधुच्छतु,
जब 'मलया' बन आती है,
तू ही खोल पँखुड़ियों के पट
कलियाँ नवल खिलाती है,
जब तू देती है वरदान !

जब तू करती है कल्याण,
तू उदार वन कर भर देती
भुवन-भुवन में स्वस्ति-सुवास
तेरे सरल स्नेह-कण निर्मल
कर देते अरुणी-आकाश ।

तरल त्रिपथगा की धारा-सी
पावन करती तीनों लोक ।
मरे हुए भी जी जाते हैं,
दुखी भूल जाते है शोक ।
[७६]

जादूगरनी

जिस पथ से बहती है, पावनि,
भूमि तृप्त हो जाती है,
दुनिया तेरे तीर न जाने
कितने तीर्थ बसाती है ।

ज्ञान, ध्यान, पूजा, सेवा, व्रत,
भूल साधना, जप, तप, दान,
तेरे पावन सरल स्नेह में
एक बार जो करता स्नान,

उसके मन की सकल कालिमा
पल भर में धुल जाती है,
एक अमर आभा पलकों में
जगमग ज्योति जगाती है ।

अशिव अशुभ स्वप्नो की छाया
जब जग पर छा जाती है,
उसे जगाने को तेरी गति
मधुर प्रभाती गाती है ।

जादूगरनी

अभिलाषा के दीपक दुनिया
तुझमें जला बहाती है,
तू सबको आश्रय देती है,
सबको पार लगाती है !

मंगलमयि, तेरे इंगित पर
चलता है जब जग अनजान,
अनायास ही मिल जाता है
उसको चिर-दुर्लभ निर्वाण ।

पाप-ताप हरती पृथ्वी के,
जीवन शान्त बनाती है ।
अपने आँचल में दुनिया के
अश्रु पोंछ ले जाती है ।

अमृत-धार कर पान, अमर हो,
तेरा गौरव गाते हैं ।
तेरे तट पर जो आते हैं,
वे धावन हो जाते हैं ।

जादूगरनी

जगजननि, तू हाथ पकड़कर
जग को मार्ग दिखाती है ।
प्रेम-लोक के स्वर्ण-सदन के
आसन पर बैठाती है ।

अखिल जगत् को जीवन देती,
सबका पालन करती है ।
वसुधा की रीती भोली में
ऋद्धि-सिद्धि तू भरती है ।

अन्धकार से दशो दिशाएँ
ढक जातीं, डर जाते प्राण,
स्नेहमयी, तब लगा हृदय से
गाती तू आश्वासन-गान ।

वज्र टूटता जब मस्तक पर,
मचने लगता हान्-हान्-कार,
तू आगे बढ़, भेल आपदा,
जननि, रोक लेती संहार ।

जादूगरनी

हृदय-हिडोले में हँस-हँस कर
तू जग-वाल मुलाती है ।
तेरी वत्सल गोदी में सो
मानवता सुख पाती है ।

घोर घटा जब धिरती नभ में,
काला हो जाता संसार,
आशा का दीपक बुझ जाता,
महा-प्रलय का उठता ज्वार,

जब घनघोर गर्जना से
भयभीत विश्व घबड़ाता है,
निपट निराशा की घड़ियों में
जब साहस सकुचाता है ।

तू छाती से चिपका लेती,
भय-सन्देह मिटाती है ।
तेरे अश्वल की छाया से
प्रलय शान्त हो जाती है
जब तू करती है कल्याण ।

जब लेती पतवार, सुजान,
जीवन-तरी जीर्ण जग की जो
शत-शत चक्कर खाती है,
कर्णधार बन उसे भँवर से
पल में पार लगाती है ।

प्रलय-कल्पना से कम्पित हो
जब पलकें मुँड जाती हैं,
संकट के घन-गर्जन से
शिथिल-सी दुनिया घवराती है ।

जादूगरनी

लक्ष्य ओट होता आँखों की,
साहस साथ न देता है,
तब जग शक्तिमयी तेरा ही
सहज सहारा लेता है ।

जब तूफानों के भोंकों से
तरणी डूबी जाती है,
तब तू मूक इशारे से ही
उर को धैर्य बँधाती है ।

जब पतवार पकड़ती है तू
वश में होता पारावार,
युग-युग के भटके प्राणी भी
सहज पहुँच जाते हैं पार ।

जब विपरीत लहर उठती है,
महाकाल की छिड़ती तान,
अन्धकार के काले अञ्चल में
होती आशा अवसान,

जादूगरनी

उस उन्मत्त निराश घड़ी में भी
छिटकाती तू मुसकान,
'सर्वनाश' को भी, सुन्दरि,
तू कर देती है मधुर महान् ।

अवला से सबला बन जाती,
बनती दुखियों की आशा ।
आश्वासन देती है तेरी
आँखों की नीरव भाषा ।

सहसा शशि-मुख दिख उठता है,
घूँघट-पट हट जाता है ।
तेरा अञ्चल, पाल-सदृश, जब
नौका पर लहरावा है,

अपने कोमल मृदुल करों से
जब तू डौंड चलाती है,
जान नहीं पाती है दुनिया
महा-प्रलय कब आती है ।

जादूगरनी

जब-जब प्रलय भाँकती है, तू
उस पर परदा करती है ।
विपदा की घड़ियों को भी
मादक करती रस भरती है ।

कभी मृदुल चितवन ही तेरी
बनती जीवन की पतवार ।
कभी मधुर मुसकान, स्नेहमयि,
करती जीवन-नौका पार ।

जिधर बहा ले जावे, वाले,
उधर विश्व बह जाता है,
तुझे सौंप कर सारा सुख-दुख
जगत् मुदित मुसकाता है ।

तेरा शशि-आनन अन्तर् में
आशा-ज्वार उठाता है ।
सुख के स्वर्ण-कूल तक जीवन-
तरणी को पहुँचाता है ।

जादूगरनी

तुम्हें मैं ढूँढ, विसुध हो, जग की
सीमा को जो करता पार,
उसे अमर करती तू, खुलता
उसके लिए मुक्ति का द्वार।

पार लगावे या न लगावे,
मृत्यु मधुर कर देती है।
अन्तिम घड़ियों में मुसकाकर
कितना रस भर देती है।

सजनि, पिलाती जाती है तू
यात्रा-पथ में मद-प्याले,
चेहोशों में देख न पाते
महामृत्यु को मतवाले।

जो पतवार तुम्हें दे देते,
उनको जीवन-मरण समान,
आत्म-समर्पण करके तुम्हें
निर्भय हो जाते हैं प्राण,
जब लेती पतवार, सुजान।

जब तू बनती, सजनि, महान्,
अस्वर के भी ऊपर अस्वर-सी,
सुन्दरि, छा जाती है ।
तारों-से कितने जग मोली में
भर कर चमकाती है ।

गूँथ अमित ब्रह्माण्डों को तू,
हार बना, करती शृङ्गार ।
तेरे एक भृकुटि-कम्पन में
मिटते-बनते हैं संसार ।

जादूगरनी

तेरे आकर्षण से ही घूमा
करते हैं रवि-शशि अविराम ।
करती रहती उन्हें प्रकाशित,
व्योतिर्मधि, तू ही अभिराम ।

अपनी माया तू अनन्त के
ऊपर भो फैलाती है ।
निर्गुण के गुण-कर्मों की
सीमा-रेखा बन जाती है ।

विधना अपनी ही रचना का
बन्दी-सा बन जाता है ।
तुझे बना, तेरे चरणों पर
अपना शीश मुकाता है ।

जिसने जन्म दिया है तुम्हको,
बन जाता वह तेरा बाल,
स्नेहमयी, तेरी गोदी में
सोकर होता ईश निहाल ।

जादूगरनी

तेरे उर का अमृत पान कर
अपनी प्यास बुझाता है।
तू अनन्त बन जाती है, माँ,
वह बालक बन जाता है।

महाशक्ति, तूने छाती से
लगा रखे हैं कितने लोक।
हरती है, फैलाकर स्नेहल-
अञ्चल, लोक-लोक का शोक।

अपने हृदय-हिडोले में तू
कितने जगत् मुलाती है,
सुख की निद्रा लेते हैं सब,
जब तू लोरी गाती है।

रवि-शशि हैं आलोकित आँखें,
यह विराट् अम्बर है वस्त्र,
है शृङ्गार-सुमन ये तारे,
विजली महाशक्ति का अस्त्र।

जादूगरनी

स्वर्ण लुटाती, दशों दिशाओं में
मद भरती आती है ।
तेरी माँकी पाकर दुनिया
अपना दुःख मुलाती है ।

जब तू मुसकाती, नभ-भू में
हो जाता है उजियाला ।
जब तू स्नेह-सुधा बरसाती,
भर जाता जग का प्याला ।

विविध संकटों में फँस दुनिया
करती है जब तेरी याद,
तेरा बरद हाथ तब बढ़कर
देता सबको आशीर्वाद ।

कण-कण में तेरी सत्ता है,
उर-उर में है तेरा वास ।
भुवन-भुवन के उपवन में तू
बसी हुई धन सुमन-सुवास ।

जादूगरनी

अपने अश्वल की छाया से
ढक लेती सारा संसार
किसमें इतनी शक्ति, नाप ले
जो तेरा विराट् विस्तार

एक इशारा प्रलय बुलाता,
एक इशारा सृष्टि अजान ।
तेरी ओर विहग-से उड़ते
लोक-लोक के पागल प्राण ।

अपनी माया के पंखों पर
सारा विश्व उड़ाती है,
कह सकता है कौन, किसे, कब
किस जग में ले जाती है ?

अजर-अमर भी तुम्हें पूजते,
उर-उपहार चढ़ाते हैं ।
नक्षत्रों के हार गूँथ कर
वे तुम्हको पहनाते हैं ।
जब तू बनती, सजनि, महान् ।

जब तू होती अन्तर्धान,
यह समृद्ध वसुधा प्राणों को
लगती है सुनसान श्मशान ।
दर्शों दिशाओं का सुहाग
भुट जाता जब करती प्रस्थान ।

तेरा पलभर का पर्दा भी
जग में प्रलय सचाता है ।
कितने कोमल हृदयों पर वह
वज्रपात बन जाता है ।
[६४]

जादूगरनी

अखिल विश्व की वीणाओ में
घज उठता है विकल वियोग ।
सकल सृष्टि का अवलम्बन है,
शक्तिमयी, तेरा संयोग ।

तारों से ये प्राण भौंककर
तुझे खोजते हैं छविमान,
पर तेरे अभाव में
संध्या-सुमनों-से हो जाते म्लान ।

अखिल जगत् की आँखें खुलकर
अपलक तारों-सी सब रात
विकल प्रतीक्षा करतीं तेरी,
अरी चंचले, री अज्ञात ।

री शशि-हासिनि, जब अपना मुख
छिपा, चली जाती उस पार,
हो जाता है नष्ट कुमुद-सा
मुरझाकर सारा संसार ।

जादूगरनी

डालों-डालों पर मोती-से
आँसू विछ जाते सब ओर,
अंगारे चुगती है दुनिया,
हो जाते बेहोश चकोर ।

शशि-विहीन निशि-सा जग-आँगन
हो जाता है शोभाहीन ।
तमसावृत अबनी विधवा-सी
लग बठती है दीन-मलीन ।

अयि मधुऋतु की साँस, खिलाती है
तू जग-उपवन के फूल ।
जब तू छिपती है वन-उपवन
विकसित होना जाते भूल ।

महाशून्य के सूने स्वर में
गुञ्जित होता विकल विहाग ।
रस के स्रोत सूख जाते हैं,
लग जाती अम्बर में आग ।

जादूगरनी

पतझड़ की सूनी ढालों—सा
लगता सकल विकल संसार,
महाशून्य में मिल जाती है
मधुपो की मादक गुञ्जार ।

इन्द्र-धनुष से रंग-बिरंगे
अश्वल का जब छिपता छोर,
महा-प्रलय की उसी समय से
उठने लगती प्रबल हिलोर ।

तेरी सत्ता के आश्रित हैं
जग के सारे राग-विराग,
तेरे छिपते ही जीवन की
आशा जग देता है त्याग ।

माया, अपने साथ ब्रह्म का
भी तू करवाती सम्मान,
ओमल होते ही विराट् के
व्याकुल कर देती है प्राण ।

आदूगरनी

महाशन्य में बैठ अकेला
'शेष' घटुत पछताता है,
आकुल हो, आह्वान-गान वह
नीरव स्वर में गाता है।

तू ही है आनन्द ईश का,
तू ही है उसका अनुराग,
तू ही उसकी शोभा, सम्बल,
शक्ति, सृष्टि का स्वर्ण-सुहाग।

रह जाता है अवनीतल में
अश्रु-सिन्धु, नभ में उच्छ्वास,
इसी अश्रु-सागर पर करता
एक कल्प तक ब्रह्म निवास।

विश्व-गीत की तान टूटती
जीवन-वीणा हाती मौन।
तेरे बिना, श्वास संसृति की,
जीवित रह सकता है कौन ?
जब तू होती अन्तर्धान !

री जादूगरनी छविमान,
अपनी इच्छा से तू कितने
रूप बदलती है, वाले !
लखकर दर्शक, चकित, मुग्ध कवि,
हुए मूक गाने वाले ।

एक घड़ी भी स्थिर कब रहता
तेरा मादक रूप अनूप,
चित्रकार अंकित कर सकता है
तेरा किस भाँति स्वरूप ।

जादूगरनी

लहर घड़ी भर में बन जाती,
एक घड़ी में ही तूफ़ान ।
अभी सरलता और नम्रता,
अभी कठिनता औ' अभिमान ।

पलभर में रहस्य बन कर तू
आकुल कर देती है प्राण,
पलभर पीछे ही बन जाती है
तू भोलापन, अज्ञान ।

क्षण में फूल, शूल क्षण भर में,
पल में पतझड़ या मधुमास,
करुणा, अश्रु, विकलता, पीड़ा,
या आनन्द, मधुरिमा, हास ।

स्वर्ण-विहान कभी बन कर तू
जागृत करती जग के प्राण,
निद्रा-मुक्त प्राण विहगों-से
गाने लगते तेरा गान ।

जादूगरनी

कभी शांत संध्या वन जग को
कर्म-काण्ड से करती दूर,
तेरे अश्वल की छाया में
हो जातीं चिन्ताएँ चूर ।

कभी दिवस का कोलाहल वन
सञ्चालित करती संग्राम,
कभी निशा की मादकता वन
शीतल करती है हृद्धाम ।

एक समय में रूप अनेको
तेरे विश्व निरखता है ।
किस जादू से, सुन्दरि, तेरा
पल-पल रूप बदलता है ।

आधी दुनिया में अधियारा,
आधे जग में परम प्रकाश,
आधे जग में सर्वनाश है,
आधे में उल्लास-विलास ।

जादूगरनी

कहीं, सजनि, छाया बन जाती,
कहीं धूप चमकाती है,
अश्रु बहाती किसी जगत् में,
कहीं मधुर मुसकाती है ।

किसी हृदय में आग लगाता है
तेरा अनुपम अनुराग ।
तेरी तान किसी को भैरव राग,
किसी को करुण विहाग ।

कृष्ण-पक्ष की निशि बनकर तू
कभी अँधेरा छाती है !
कभी शरद् की पूनो बनकर
ज्योत्स्ना-जाल विछाती है ।

कभी ग्रीष्म की दोपहरी बन
उर में लपट लगाती है,
कभी घटा-सी धिर कर शीतल
जीवन-धार बहाती है ।

जादूगरनी

कभी सुधा का स्रोत, कभी विष,
क्या-क्या रूप दिखाती है !
बुद्धि भूलती सुध अपनी, जब
तुम्हें समझने आती है ।

बहुरूपिणि, तू भोले उर को
कितनी बार भुलाती है,
कभी पटक देती है पथ पर,
उर में कभी मुलाती है ।

तू रहस्य है, इसीलिए, तो,
लगती है जग को प्यारी,
ऐ अनन्त की कली, जगत् की-
तेरे बिना शून्य क्यारी !

जिसकी जैसी आँखें होती,
तू वैसी बन जाती है ।
कभी निशा-सी, कभी उषा-सी,
अम्बर में मुसकाती है ।

री जादूगरनी छविमान !

—आज जब कि राष्ट्र में एक घोर मंथन हो रहा है और नवीन युग के निर्माण की तैयारियाँ हो रही हैं—ऐसे समय अपने महान् राष्ट्र के एक नम्र सेवक बनने के लिए, एक योग्य नागरिक बनने के लिए, हमारा आपसे नम्र अनुरोध है कि आप 'सस्ता-साहित्य-मण्डल'के उत्तम एवं क्रान्तिकारी प्रकाशनों का अध्ययन करें। वे स्वास्थ्यकर होते हैं। उनमें जीवन-निर्माण करने की शक्ति होती है।

मन्त्री

